

रविवर

विजय मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

भूमिका रविवर

राजकिशोर मिश्र साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

अध्यक्ष - भारती परिषद्

प्रकाशक

अमरनाथ जैन, प्रधानमन्त्री

कानपुर जैन मठ

मुद्रक

सुमन प्रेस सतरजी मुहाल,

कानपुर

जैन धर्म : एक परिचय

लेखक

विजय मुनि शास्त्री साहित्यरत्न

卐

प्रकाशक

अमरनाथ जी जैन, प्रधानमंत्री

कानपुर जैन सघ

आदर्श जीवन •

धर्मों में हो तेज,
तेज म सत्य, सत्य में श्रद्धा ।
वाणी में हो श्रद्धा,
श्रद्धा म विनय, विनय में श्रद्धा ॥

—मुक्त चिन्तक

आदर्श अहिंसा :

प्रगति राष्ट्र के जीवन तरु की,
है उद्योग-प्रगति पर निर्भर ।
किन्तु घटी उद्योग हितकर,
जिसमें बड़े अहिंसा-निर्भर ॥

सर्वोदय का गान :

विश्व शान्ति अनेकान्त-रथ,
सर्वोदय का प्रतिफल गान ।
मैत्री वरुणा सब जीवों पर,
जैन धर्म जग ज्योति महान् ॥

— उपाध्याय अमरमुनि

आमुख

किसी धर्म के व्यापक प्रसार तथा लोक जीवन में उसकी प्रतिष्ठा करने के लिए उसके स्वस्थ स्वरूप का निरूपण करने वाले विवेचनात्मक साहित्य के निर्माण की निरान्त आवश्यकता होती है।

इस उद्देश्य को सम्मुख रखते हुए सांस्कृतिक चेतना के अप्रदूत करिहा भी अमरचन्द्र जी महाराज के कानपुर-चातुर्मास के अधमर पर सम्भार अध्येता श्री विजय मुनि जी महाराज द्वारा प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन जैन धर्म के प्रचार के अभिप्राय से किया गया एक सफल प्रयत्न है।

वामन में कानपुर में उपाध्याय भी का चातुर्मास समस्त स्थानकवासी जैन समाज के लिये अत्यन्त गौरव की बात सिद्ध हुई है। समूचे चातुर्मास में आपने न केवल अपने मार गभिन एव तत्परदर्शी प्रवचनों द्वारा सभी जैन अध्या

अजैन श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध करके धार्मिक चेतना सम्पन्न यातावरण का निर्माण ही किया है, अर्थात् उर्ध्वमना जिज्ञासु श्रावकों के हृदय में अहिंसा और सत्य का बीजारोपण एवं पल्लवन भी किया है।

मुनि श्री जैन जगत के उन ग्याति लब्ध मूर्धन्य सतों में से एक हैं, जिनका मूल उद्देश्य प्राणवान् आदशों का स्थापना एवं जन कल्याण के निमित्त अहिंसा और सत्य का मजल लेकर साधना पथ पर अहिंस, अदृष्ट निष्ठा के साथ अग्रसर होते रहना है। आपकी साधना "सत्य, शिव और सुन्दर" का सर्जन करने वाली प्रेरणा से समलित है। अतस्तल की गहनता में अनुभव के फल पर जिस अलौकिक सत्य का साक्षात्कार आपने अपने जीवन में किया है, मानव मङ्गल के निमित्त वही प्रतिदिन प्रवचन के ध्यान से हृदय की धाणी के रूप में प्रस्तुत होता रहता है। समन्वय प्रधान प्रवाहपूर्ण शैली में अपने अभिभाषणों द्वारा अतर्विद्येक का मङ्गल प्रकाश निकीर्ण करते हुये युग की मलीनता को विनष्ट करने का आप सजग प्रयास करते रहते

है। आत्म चिन्तन द्वारा प्राप्त अनुभूतियों की अभिव्यक्ति एवं मृत्यु का दिव्य प्रकाश आपके प्रज्ञान का तन्व और मेरु-दृष्ट है।

कवि भी का व्यक्तित्व प्रभावशाली एवं धनु-मुग्धी है। आप हृदय से भाव प्रवण कवि, मन्त्रिक से महान चिंतक एवं उदात्त विचारक, आगर से मयम पूत साधक और व्यवहार से निरक्षर सन्त हैं।

अनेक चिन्तन प्रज्ञान प्रथों का प्रणयन करके भारतीय वाङ्मय को यथेष्ट समृद्ध करने का ध्येय भी आपको प्राप्त है। दार्शनिक भित्ति आपके साहित्य की आधार जिना है। काव्यात्मक सरलेश, सरल अभिव्यक्ति, सासृग्ण्य विशेषमता एवं हृदयमाही मार्मिकता आपकी भाषा-शैली की विशेषतायें हैं।

संक्षेप में आपके प्रथम आपकी विचार-चेतना एवं आरम्भ साधना की साधारण प्रतिभा है।

प्रस्तुत प्रथम 'जैन धर्म एक परिषय' के प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार भी विजयमुनि जी शास्त्री

उपाध्याय श्री द्वारा प्रशस्त साधना-पथ के कर्मठ पंडित हैं। आपकी भाषा सयत, सशक्त एवं परिष्कृत है। भाषों और विचारों के अनुरूप सुमगठित शैली में विषय का निदर्शन बड़ी कुशलता पूर्वक किया गया है। प्रौढ़ एवं प्रवाह-युक्त भाषा, व्यवस्थित वाक्य रचना, शब्द चयन में सतर्कता एवं समास शैली में विचार व्यंजना आपके वाग्निधान की विशेषतायें हैं।

। इस प्रकार के परिचयात्मक प्रयोगों में लेखक का यह दायित्व होता है कि वह भाव व्यंजना का ऐसा सरल एवं सुबोध स्वरूप सम्मुत्पन्न रखे जिसका आश्रय लेकर पाठक प्रतिपादित विषय की सम्यक् अनुभूति प्राप्त कर सकने में समर्थ हो सके। यह बड़ा अत्युक्ति न होगी कि चिंतन-प्रधान अभिव्यक्ति एवं सामंजस्यपूर्ण व्याख्या द्वारा मुनि श्री जी अपने दायित्व-निर्वहण में पूर्ण सफल सिद्ध हुये हैं। आपकी विचारशैली में नवीन एवं पुरातन का सङ्गम है। जैन वाङ्मय के आख्यानो के आधार पर भाषनाओं का सज्जनात्मक परिधान धारण किये हुये आपका एक कहानी संग्रह "पीयूष-घट"

नाम से विगत मास में प्रकाशित हुआ है। इन जीवन-स्पर्शी लघु-कथाओं में सामाजिक पतन की निवृत्ति के लिये आध्यात्मिक भाव शिल्पी जिह्वल सा प्रनीत होता है।

आपकी वाग्धारा गतानुगतिक मान्यताओं के भीतर ही सचरण नहीं करती, वरन् नव्य-तरङ्गों-न्मेष लिये दृये मौलिक भावभूमि पर भी प्रसरण करती हुई प्रनीत होती है। 'जैन धर्म एक परिचय' के उपक्रम में विषय प्रवेश की दृष्टि से लेखक ने जैन धर्म की प्रार्चीनता, जैन की परिभाषा और केन्द्रीय विचार उपशीर्षकों द्वारा विरति और विवेक की नींव पर समाधागित जैन धर्म की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना का सुचम उत्स्य पूर्व पीठिका के रूप में प्रस्तुत करके पाठकों को वस्तु के प्रमुख विचार सघातों को हृत्पथक्रम करने की प्रेरणा प्रदान की है।

पुस्तक तीन प्रधान शीर्ष खंडों (१) धर्म (२) दर्शन (३) संस्कृति, में विभक्त है।

धर्म में धर्म भावना की आधारशिला भावना-

विशुद्धि, उसके तीन प्रकार (१) अहिंसा (२) सयम (३) तप की नव सुस्कार-युक्त परिभाषायें, उनके शुद्ध स्वरूप तथा समाज, राष्ट्र और विश्व की प्रगति में इनके विकास की आवश्यकता एवं उपादेयता का कुशलतापूर्वक विश्लेषण किया गया है।

दर्शन में आत्मवाद के अन्तर्गत आत्मा का स्वरूप उसके प्रकार, कर्मवाद में कर्म की परिभाषा उसके भेद, कर्म बन्ध और कर्म क्षय के कारण तथा कर्मों का फल, अनेकान्तवाद, नयवाद और प्रमाणवाद के स्वरूप की व्याख्यायें व्यावहारिक और बोध-गम्य भाषा-शैली में प्रस्तुत की गई हैं।

संस्कृति में समन्वय भावना, गुण पूजा, समतावाद और नारी गौरव का सक्षिप्त निर्देशन तथा जैन धर्म के पर्वों पर प्रकाश डाला गया है।

परम्परा पोषित प्रणाली के अनुसार प्रतिपाद्य विषय के पूरक स्वरूप ग्रन्थ के अन्त में उपसंहार का भी प्रकरण सलग्न है।

अनेक दृष्टि कोणा से पुस्तक का प्रणयन और प्रकाशन उपयोगी एवं सराहनीय है। अध्ययन शील जिज्ञासु पाठक इससे लाभान्वित होंगे। आशा है, हिन्दी के परिचय-ममीक्षा सम्बन्धी साहित्य में यह अपना निश्चित स्थान अवश्य घना लेगी।

पुस्तक को धर्म प्रचारार्थ त्रितरित कराने के उद्देश्य से प्रकाशित कराने का श्रेय यू०पी० रोलिंग मिल एवं छद्दामल त्रिलोकीनाथ आदि व्यापारिक प्रतिष्ठानों के सचालक, श्री जैन श्रेताम्बर स्थानक वामी सघ, कानपुर के सभापति लाला छद्दामल जैन के कनिष्ठ पुत्र लाला अमरनाथ जैन को है। लाला छद्दामल जी का कानपुर नगर के एक संभ्रान्त नागरिक व कुशल व्यवसायी हैं। आपका समूचा परिवार धर्म-सहिष्णुता और उदार मनोवृत्ति के कारण समाज में ममाहृत है। आपने ज्येष्ठ पुत्र श्री त्रिलोकी नाथ जैन उपयुक्त मिल के प्रबन्ध निर्देशक व सचालक हैं। पार्श्वात्य मभ्यता एवं सस्कृति से प्रभावित होने पर भी आपकी अपने धर्म में आतरिक आस्था है। धार्मिक अनुष्ठानों में

भी आप बधाशक्य अपना सहयोग प्रदान करते रहते हैं। लाला जी के कनिष्ठ पुत्र श्री अमरनाथ जैन, श्री जैन श्वेताम्बर स्थानक वासी सघ, फानपुर के वर्तमान प्रधान मंत्री हैं। समाज और धर्म के अभ्युत्थान के लिये आप सदैव बद्धपरिकर प्रस्तुत रहते हैं। निरभिमान, विनम्र एवं मृदुभाषी होने के कारण अपने सम्पर्क में आने वाले को यह प्रनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। परोपकार एवं सत-सेवा में तन मना धन से कृत-सकरूप रहना आपका स्वभाव है। साहित्य में भी आप अभिरुचि लेते हैं। विगत दिनांक ४-६-६० को श्री जैन स्थानक माता रुक्मणी भवन में 'अहिंसा-दिवस' के उपलक्ष्य में कवि श्री के तत्त्वावधान एवं आचार्य श्री हरिशंकर शर्मा डी० लिट० (आगरा) की अध्यक्षता में आयोजित अद्वितीय विशाल कविसम्मेलन की सफलता का मूलतः श्रेय आप को ही प्राप्त है। आपकी उत्पट लगन अधिक परिश्रम एवं उदारता पूर्वक व्यय भार-रहन करने की मामर्थ्य के परिणाम स्वरूप इस सम्मेलन में नगर और बाहर के पचास से अधिक रस-सिद्ध कवियों ने

भाग लेकर पाँच घण्टे से अधिक समय तक काव्यामृत की वर्षा करते हुये श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर दिया था। सम्मेलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी, इसमें नगर के नवीन एव प्राचीन दोनों काव्य शैलियों के शीपस्थ कवियों के सम्मिलित होने के अतिरिक्त नगर के चोटी पर के गण्य मान्य विद्वान, साहित्यिक एव महाविद्यालयों के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक एव अध्यक्ष-गण श्रोताओं के रूप में उपस्थित थे।

इस प्रकार अपनी धर्मनिष्ठा, वर्तव्य निर्वहण-क्षमता एव शालीनता के कारण श्री अमरनाथ जी जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज कानपुर के मेरुमणि हैं। इस प्रकार की सुन्दर श्लाघनीय कृति के प्रकाशन के कारण आप सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं।

राजकिशोर मिश्र,

अध्यक्ष

भारती-परिषद्

कानपुर।

दिनांक २७-१०-६०

विषय-सूची

★

१ — उपक्रम	३
२ — धर्म	६
३ — दर्शन	३६
४ — संस्कृति	३०
५ — उपसंहार	३६

★

उपक्रम

जैन धर्म की प्राचीनता .

भाग्य के घर्मा में 'जैन धर्म' भी एक अत्यन्त प्राचीन धर्म है। क्योंकि भारत के प्राचीन से प्राचीन साहित्य में इसने अस्तित्व का उल्लेख उपलब्ध है। जैन परम्परा के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के जीवन का कुछ वर्णन ऋग्वेद में, भागवत में तथा अन्य पुराणों में मिलता है। तीर्थंकर तीर्थंकर पारशनाथ का वर्णन बौद्ध पिटकों में किया गया है। पारशनाथ के चार याम सचर का स्पष्ट कथन यहाँ पाया जाता है। इस से इतना तो स्पष्ट है, कि 'जैन धर्म' वैदिक धर्म से तथा बौद्ध धर्म से सर्वथा भिन्न है। उसका अपना धर्म है, अपना दर्शन है, अपना इतिहास है, और अपनी एक मस्कृति है। भारत के उत्थान में, भारत के विकास में तथा भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में उसका भी उतना ही महान् योगदान रहा है,

जितना कि ध्यान किसी धर्म एवं मस्कृति का हो सकता है। जैनधर्म ने यदि अपने पड़ोसी धर्मों से कुछ विचार सस्कार लिये हैं, तो उसने उनको बहुत कुछ दिया भी है।

जैन की परिभाषा :

‘जैन’ शब्द ‘जिन’ शब्द से निकला है। अतः ‘जैन’ को समझने से पूर्व ‘जिन’ को समझना आवश्यक है। ‘जिन’ शब्द का अर्थ है, विजेता। जैन संस्कृति विजय की संस्कृति है, पराजय की नहीं। विजय क्या है? उसके साधन क्या हैं? और विजेता कौन हो सकता है? जैन धर्म और जैन संस्कृति, उक्त तीनों प्रश्नों का सुन्दर समाधान करती है, कि अपने मनोविचारों को जीवना सही विजय है, अहिंसा और सत्य उसके साधन हैं, तथा प्रेम से द्वेष पर और समता भाव से राग पर विजय पाने वाला ही विजेता है। अतः राग एवं द्वेष का विजेता ‘जिन’ है, और जिन की उपासना करने वाला जैन है। ‘जिन’ को ‘अरि-हन्त’ भी कहते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ

रूप अरि का हृत्ता 'अरिहन्त' कहा जाता है। जिन भाषित धर्म और सस्कृति को जैन धर्म एवं जैन सस्कृति कहते हैं।

केन्द्रीय विचार :

जैन धर्म और जैन सस्कृति की च्यारचा बहु विस्तृत एवं बहुत गम्भीर है। वह सब तो उसके विशाल साहित्य के अध्ययन से ही जाना जा सकेगा। परन्तु जैन परम्परा का केन्द्रीय विचार है—“अहिंसा और अनेकान्त।” अहिंसा आचार पत्र है, और अनेकान्त विचार पत्र, अहिंसा धर्म है, और अनेकान्त दर्शन। आचार में अहिंसा और विचार में अनेकान्त, यह जैन धर्म का सर्वोच्च सिद्धान्त है, मूलभूत सिद्धान्त है।

जैन धर्म एक धर्म है, एक दर्शन है, एक सस्कृति है, जीवन की एक विशिष्ट पद्धति है और एक अध्यात्म धर्म है।

जैन धर्म के अनेक स्वरूप हैं। वह विश्व कल्पना के समान महान और जीवन की भाँति विशाल है,

उसके सन रूप भगवान् महावीर के उपदेशों पर आधारित है।

जैन धर्म आत्म सत्कार का धर्म है। महावीर तो केवल शास्त्रा ह, मार्ग-दर्शक ह। मनुष्य को अपनी मुक्ति स्वयं की साधना से पानी है। वह अपना प्रकाश स्वयं है।

जैन धर्म विरति और विवेक पर खड़ा है। सत्य और प्रकाश पर उमका विशेष बल है। इस-लिये अन्ध-विश्वाम और बौद्धिक मोह को यहाँ कोई स्थान नहीं है।

जैन धर्म के नाम पर उसके विशाल इतिहास में एक भी व्यक्ति को पीड़ित नहीं किया गया। अतः जैन धर्म उदारता, महिष्णुता और विश्व प्रेम का धर्म है।

सामाजिक निर्माण में समता का प्रसार सर्व प्रथम जैन धर्म ने ही किया है, उसके समन्वयात्मक बुद्धिवाद ने समाज सुधारकों को प्रेरणा दी है और भारतीय इतिहास में मानवतावादी युग लाने का श्रेय भगवान् महावीर को ही है।

राजनीतिक क्षेत्र में जैन धर्म ने सम्राट् श्रेणिक, सम्राट् कृणिक, चन्द्रगुप्त मौर्य, कारवेल और सम्राट् कुमारपाल जैसे शासकों को पैदा किया। इनके राज्य में सिन्धी का आर्थिक अथवा सामाजिक शोषण नहीं किया।

मन्युति, माहित्य और कला के क्षेत्र में जैन धर्म की अभूतपूर्व देन है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी, कि जैन धर्म हर पहलू में विश्व का एक महान धर्म है।

जैन धर्म मनुष्य की उच्चतम नैतिक चेतना का प्रतीक है, और मानव जीवन की गहन समस्याओं का समाधान उसमें विद्यमान है, उसने जीवन की ग्लमनों को मुक्तमाने का प्रयत्न किया है।

जैन धर्म मानव को अमत्य से सत्य की ओर, अधकार से प्रकाश की ओर, समार से मुक्ति की ओर और भोग से योग की ओर ले जाता है। वह अहिंसा, अनेकान्त तथा अपरिग्रह की ससृष्टि का प्रसार करता है।

धर्म

भावना विशुद्धि :

धर्म साधना का एक—मात्र उद्देश्य है, भावना विशुद्धि। मन की मलिन भावना से मनुष्य का पतन होता है, और विमल भावना से उत्थान। जब तक ससार में मनुष्य जाति की सत्ता है, तब तक उसके अभ्युत्थान के लिये धर्म की आवश्यकता भी रहेगी। जीव-जगत में मनुष्य से बढ़कर श्रेष्ठ एव ज्येष्ठ अथ कोई नहीं है। परन्तु प्रश्न सबसे बड़ा यह है, कि मानव की श्रेष्ठता तथा ज्येष्ठता का आधार क्या ? उसकी आकृति अथवा उसकी प्रकृति। निश्चय ही उसकी महानता का आधार आकृति नहीं, उसका प्रकृति है। भूग्य व्यास लगने पर ग्राही लेना, धरुने पर सों जाना, अपने जीवन को सुरक्षित रखने की चिन्ता और वासना की वृत्ति का प्रयत्न—ये चार बातें मनुष्य के समान पशु में भी हैं। फिर भी मनुष्य, मनुष्य है और पशु, पशु है।

इस भेद-रेखा का आधार अग्रय होना चाहिये । वह है—धर्म । धर्म की अभिव्यक्ति मानव म ही परिलक्षित होती है । धर्म कोई बाहर की वस्तु नहीं है, जिसको बाहर से भीतर डाला जाए । वह तो मनुष्य की अपनी शुद्ध चेतना का ही नाम है । अतः भावना विशुद्धि ही तो धर्म है । धर्म शब्द के दो अर्थ हैं—स्वभाव और आचार । अपना स्वभाव तो प्रत्येक वस्तु में रहता ही है—जैसे अग्नि में उष्णता, मनुष्य में मनुष्यता—परन्तु जीवन-शोधन के लिये आचार एक परम तत्त्व है । सब धर्मों में आचार पहला धर्म है । आचार एक जीवन-तत्त्व है, जो व्यक्ति में, समाज में, राष्ट्र में और विश्व में व्याप्त है । जिस शक्ति से व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का भङ्गल होता है, वही धर्म है । वह धर्म तीन प्रकार का है—अहिंसा, सयम और तप ।

अहिंसा : मानव का मूल धर्म :

“अहिंसा परमो

धर्म” जैन सस्कृति का यह एक पवित्र और प्राण-भूत तत्त्व है । भ्रमण सस्कृति में यदि कोई स्वर्णमूत्र

है, तो वह यह है—“जीवो और जीने में।” जैन धर्म का इतिहास एक प्रकार में अहिंसा के विविध प्रयोगों का इतिहास है। अहिंसा का अर्थ है—“विचार में, आचार से और उचार में किसी भी व्यक्ति के प्रति अश्लेषण की भावना न रखना, ममार के मध्य जीव सुखी रहे, मध्य नीच स्वस्थ रहे, उसके जीवन का कल्याण हो, और मंसार में कोई जीव दुर्गम न हो।” इस प्रकार की भावना को अहिंसा कहा गया है। सबसे मुख्य में अपना मुख समझना, यही तो अहिंसा है, यही तो परम धर्म है। मनुष्य दो कारणों से हिंसा करता है—रक्षण के लिये और भक्षण के लिये। जब गृहस्थ अपने परिवार समान और राष्ट्र के रक्षण के लिये प्रयत्न करता है, तो उसमें हिंसा भी हो जाती है। परन्तु वह रक्षण की हिंसा है। गृहस्थ में स्वरक्षण की शक्ति होनी ही चाहिये। परन्तु भक्षण के लिये, अपने खाद के लिये पशुओं की एवं पक्षियों की जो हिंसा की जाती है, वह तो स्पष्ट ही अधर्म है। एक तीसरे प्रकार की हिंसा भी प्राचीन भारत में

प्रचलित थी-धर्म के लिये अर्थात् यज्ञ के लिये । स्वर्ग के देवा को प्रसन्न करने के लिये' पशु-पक्षियों को तथा मनुष्यों को भी यज्ञ-कुण्ड की ज्वालाओं में भोंक दिया जाता था । धर्म के नाम पर होने वाली यह हिंसा, अन्य हिंसाओं से अधिक भयङ्कर थी । जैन मन्त्रि के धर्म शास्त्रियों ने—तीर्थंकरों ने तथा गणधरों ने—मामाहार और हिंसा-प्रधान यज्ञों का दृढ़ विरोध किया था । फलतः मनुष्य समाज हिंसा से धीरे-धीरे अहिंसा की ओर अग्रसर होता रहा है । क्योंकि अहिंसा आत्मा का स्वभाव है, और हिंसा विभाव । अहिंसा ने अमर आधार हैं—स्नेह, सहानुभूति और महिष्णुता । जबकि हिंसा के आधार हैं—द्वेष, घृणा और ईर्ष्या । मनुष्य जब अपने में बुरा हो जाता है, तब उसमें से हिंसा फूट निकलती है । किंतु ज्यों-ज्यों वह विराट होता जाता है, त्यों-त्यों उसमें से प्रेम, दया, करुणा और सेवा के भाव प्रस्फुटित होते हैं । समाज, राष्ट्र और विश्व के संरक्षण के लिये अहिंसा का विकास आवश्यक है ।

को स्वस्थ, सुन्दर गग सुगन्ध बनाने के लिये सयम की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि बिना सयम के उत्कृष्ट कर्म, सत्कर्म नहीं किये जा सकते। सयम जैन सस्कृति की भव्य आत्मा है। जैन सस्कृति का मूल आधार ही शुद्ध आचार है। मयम में सौन्दर्य है, शौर्य है और अद्भुत सामर्थ्य है।

सयम के प्रकार :

ससार में अनेक प्रकार के पाप हैं, परन्तु मुग्य रूप में पाँच पाप हैं, जिनमें अन्य सभी प्रकार के पापों का समावेश किया जा सकता है। ये पाप ये हैं— हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार और परिग्रह। उक्त पापों के आचरण से आत्मा का पतन हो जाता है। मनुष्य का नैतिक पतन हो जाता है। इनको पाँच आश्रय भी कहते हैं। इसके विपरीत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये पाँच धर्म हैं, सयम हैं, सधर हैं, आचार हैं। इनकी साधना से मनुष्य जीवन का कल्याण होता है, उत्थान होता है। इनको पाँच मधर भी कहते हैं। पञ्च आश्रय ससार

के कारण है, और पञ्च संवर मोक्ष के कारण ।
 बुद्ध भोग-प्रिय लोग समय को धन्धन कहते हैं ।
 किन्तु यह उनकी भूल है, क्योंकि समय धन्धन
 नहीं, एक नियंत्रण है, जिमको साधक अपनी
 इन्द्रा से स्वीकार करता है ।

संस्कृति का मूल नीज : तप :

संस्कृति का मूल
 नीज तप है । अहिंसा की साधना के लिये समय
 आवश्यक है, और समय की सुरक्षा के लिये तप ।
 तप की साधना करने वाला अहिंसा और समय
 की साधना करेगा ही । तप क्या है ? वह आत्मा
 का एक तेज है । आत्मा का दिव्य प्रकाश है । तप
 का अर्थ न भूगे मरना है, और न शरीर को सुगा
 डालना ही । तप का वास्तविक भाव है, अपनी
 वासनाओं का दमन । बिना तप के जीवन उर्पर
 नहीं बन सकता । वासना वासित जीवन धर्म की
 आराधना में सप्रथा असफल प्रमाणित होता है ।
 वस्तुतः तपोहीन जीवन धर्म को धारण नहीं कर
 सकता । अतः तप जीवन शोधन का एक विशेष तत्व

है। षट् सटिष्णुता, मनोनिग्रह और वामना दमन ही वस्तुतः तप है। उपवास लिया है, व्रत लिया है, अन्न एवं जल का त्याग कर दिया है, फिर भी मन में कषाय भावना और विषय लालसा घनी रहती है, तो वह व्रत नहीं, एक प्रकार का लषा है, जो किसी से बाध्य होकर किया जाता है। बिना भावना के और बिना विवेक के किया तप, केवल देह दमन है।

तप का शुद्ध स्वरूप :

तप आत्मा के विकारों को नष्ट करने के लिये किया जाता है। अतः तप का सम्बन्ध आत्मा और मन से है। देह से बहुत कम। "तपो धर्मस्य हृदयमहा" तप को कर्म का हृदय कहा गया है, मार कहा गया है। तप क्या है ? इसने उत्तर में कहा गया है, कि "कर्मणा तापनात् तप"। जिस प्रकार तपाने पर सुवर्ण की मिट्टी सुवर्ण से दूर कर दी जाती है, उसी प्रकार तप से आत्मा के कर्मों को विकारों को दूर किया जाता है। कर्मों का तापन जिससे हो, वही तप है।

तप का साधना करने वालों को यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है, कि तप उतना ही करना चाहिये, जिससे मन में समाधि भाव घना रहे। शक्ति न होने पर भी जो तप प्रशमा पाने के लिये किया जाता है, वह सच्चा तप नहीं। तप के दो रूप हैं—ब्राह्म और आभ्यन्तर। जीवन शुद्धि के लिये दोनों प्रकार के तपों की आवश्यकता है, मानसिक तप की भी, और शारीरिक तप की भी।

दर्शन

आत्म वाद *

समस्त दर्शन-शास्त्रों का मूल-तत्त्व है—आत्मा। एक चार्वाक की छोड़कर भारत के शेष समस्त दर्शन आत्मा की मत्ता में विश्वास रखते हैं। भल ही आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में वे एक मत न हो सके हो, परन्तु जड़, पुद्गल, कर्म, माया, प्रकृति और धामना से भिन्न भी एक चेतन तत्त्व है, इस विषय में किसी प्रकार का विवाद नहीं है। आत्मा की मत्ता स्वीकार करने पर ही कर्म, लोक परलोक, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक और मोक्ष की चर्चा साधक हो सकती है। आत्मा है, तो ये सब भी हैं। नहीं तो, नहीं। जैन धर्म, जैन-दर्शन और जैन सस्कृति आत्मा की शाश्वत मत्ता में पूर्ण श्रद्धा एवं पूर्ण विश्वास करते हैं। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा का स्वरूप मक्षेप में इस प्रकार है।

आत्मा का स्वरूप :

आत्मा एक चेतन तत्त्व है, जो मग्न अनर, अमर, तथा शाश्वत है। जिसका न कभी जन्म होता है, और न कभी मरण। जन्म, जरा और मरण ये शरीर के धर्म हैं। अतः शरीर में होते हैं, आत्मा में नहीं। आत्मा न शस्त्र से फटता है, न आग में जलता है, न धूप में सूखता है और न पानी में गलता है।

आत्मा ज्ञान रूप है। प्रत्येक वस्तु को देखना, जानना, आत्मा का ही धर्म है, जड़ का नहीं। जब तक आत्मा शरीर में है, तभी तक मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर काम करते हैं। अतः जैन दर्शन आत्मा को ज्ञान-स्वरूप कहता है।

आत्मा अमूर्त है। उसमें न रूप है, न रस है, न गन्ध है, और न स्पर्श ही। क्योंकि ये सब पुद्गल के धर्म हैं। आत्मा के धर्म तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य हैं। आत्मा को इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। आत्मा तो अनुभूति का विषय है।

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा एक नहीं, अनन्त है। क्योंकि आत्माओं का कभी मर्त्या की दृष्टि से अन्त नहीं होता, अतः वे अनन्त हैं। संसार में प्रत्येक जीव की दशा एक जैसी नहीं है। कोई सुखी है, कोई दुखी है। कोई विद्वान् है, कोई मूर्ख है। कोई रोगी है, कोई स्वस्थ है। जीव की ये विभिन्न दशाएँ प्रमाणित करती हैं, कि आत्मा एक नहीं, अनन्त है। और, प्रत्येक आत्मा अपने स्वरूप में सर्वथा स्वतन्त्र है।

आत्मा के प्रकार :

शास्त्रकारों ने आत्माओं को दो विभागों में बाँट दिया है—ससारी और मुक्त। जीवों में जब तक राग, द्वेष और मोह है, तब तक वे ससारी हैं। ससारी ज्ञान में कर्म-मल लगा रहता है। कर्म-मल से मुक्त आत्माओं को सिद्ध कहते हैं। चार गति—नरक गति, तिर्यक्ष्णगति, मनुष्यगति, देवगति—तथा, ब्रह्म और स्थावर—ये सब भेद ससारी जीवों के हैं। मुक्त अवस्था में आत्माओं में किसी प्रकार का भेद नहीं रहता। एक

घार एक आत्मा जब अपने सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और मन्थक-चारित्र्य की साधना से मुक्त हो जाता है, सिद्ध हो जाता है, तब फिर वह कभी सत्सार में नहीं आता । अनन्त काल के लिये सिद्ध हो जाता है ।

कर्म चाट :

सत्सारी आत्मा अनादिकाल से कर्म परम्परा में पड़ा हुआ है । पुराने कर्मों के योग से नये कर्मों के घन्ध से जीव नाना-योनियों में और नानाजातियों में परिभ्रमण करता है । प्रतिक्षण आत्मा अपने पूजकृत कर्मों को भोगता हुआ नवीन कर्मों का उपाजन करता रहता है । अतः जन्म और मरण की परम्परा अनन्तकाल से चली आ रही है । जीव अनादिकाल से कर्मवश होकर विविध भवों में भ्रमण कर रहा है । जन्म और मरण का मूल, कर्म है । जीव अपने शुभ तथा अशुभ कर्मों के साथ पर-भय में जाता है । जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल पाता है ।

कर्म की परिभाषा :

‘कर्म’ शब्द का अर्थ साधारण भाषा में कार्य, क्रिया अथवा प्रवृत्ति किया जाता है। वेदों में यज्ञ क्रिया को कर्म कहा है। पुराणों में धर्म नियमों को कर्म कहा है। गीता में कर्त्तव्य को कर्म की सज्ञा दी गई है। परन्तु जैन दर्शन में कर्म एक वह तत्त्व है, जो आत्मा के ज्ञान आदि निज गुणों पर आवरण रूप होता है, और वह आत्मा से भिन्न एक विशेष प्रकार का पुद्गल तत्त्व है। कर्म, आत्मा की आवरण शक्ति है।

कर्म के भेद :

जैन दर्शन में कर्म के दो भेद हैं— द्रव्य कर्म और भाव कर्म। कार्मण जाति का पुद्गल अर्थात् जड़ तत्त्व, जो कि आत्मा के साथ मिलकर कर्म के रूप में परिणत होता है, वह द्रव्य कर्म कहलाता है, और राग-द्वेषात्मक परिणाम को भाव कर्म कहते हैं।

कर्मबन्ध के कारण :

जैन दर्शन में कर्म बन्ध के दो कारण मुख्य रूप में माने गये हैं—योग और कपाय । शरीर, वाणी और मन की क्रिया को योग कहते हैं । क्रोध, मान, माया और लोभ को कपाय कहते हैं । कपाय की तीव्रता एवं मन्दता से ही कर्म के फल में तीव्रता और मन्दता पैदा होती है । जब तक कपायों का जय नहीं होगा, तब तक कर्मों का बन्ध होता ही रहेगा और आत्मा की संसारी अवस्था का अन्त नहीं होगा ।

अष्ट कर्म :

जैन दर्शन में कर्म की मूल प्रकृति आठ हैं । ये प्रकृतियाँ ही जीव को अनुकूल एवं प्रतिकूल फल देती हैं । ये ये हैं—

- | | | | |
|---|-----------|---|---------|
| १ | ज्ञानावरण | ५ | आयुष्य |
| २ | दर्शनावरण | ६ | नाम |
| ३ | वेदनीय | ७ | गोत्र |
| ४ | मोहनीय | ८ | अन्तराय |

संस्कृत

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय एवं अन्तराय ये चार घाती कर्म कहे जाते हैं, क्योंकि ये चार आत्मा के चार मूल गुणों का—ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य का—घात करते हैं। शेष चार अघाती कर्म हैं, क्यों कि ये आत्मा के किसी भी निज गुण का घात नहीं करते।

कर्मों का फल :

ज्ञानावरण कर्म आत्मा के ज्ञान गुण का, दर्शनावरण आत्मा के दर्शन गुण का, मोहनीय आत्मा के श्रद्धा एवं चारित्र्य गुण का और अन्तराय आत्मा के वीर्य-गुण का (आत्म शक्ति का) घात करता है। वेदनीय सुख दुःख का अनुभव कराता है। आयुष्य से नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देव भवों की प्राप्ति होती है। नाम से शरीर, इन्द्रिय, जाति और गति आदि प्राप्त होते हैं। गोत्र से जीवों को उच्चत्व एवं नीचत्व मिलता है।

कर्म क्षय के कारण :

राग, द्वेष और मोह को जीतने से और चार कर्माचारों का त्याग करने से

आत्मा अपने समस्त कर्मों का नाश करके निद्ध, बुद्ध, मुक्त और परमात्मा बन सकता है। प्रत्येक आत्मा उस प्रकारों का उन्मूलन करके समारी से मुक्त बन सकता है।

अनेकान्तवाद :

जैन दर्शन की आधारशिला है,— अनेकान्तवाद। जैन दर्शन एक वस्तु में अनन्त धर्म स्वीकार करता है। इन धर्मों में से व्यक्ति अपने अभीष्ट धर्मों का समय-समय पर कथन करता है। वस्तु के जितने धर्मों का कथन हो सकता है, वे समस्त धर्म उस वस्तु में रहते हैं। अनन्त अथवा अनेक धर्मों के कारण ही वस्तु को, पदार्थ को जैन दर्शन में अनन्त धर्मात्मक किंवा अनन्त धर्मात्मक कहा जाता है। अनेकान्तवाद को स्याद्वाद एवं अपेक्षावाच भी कहते हैं।। 'स्यात्' शब्द का अर्थ है—'कथयित्' और वाद का अर्थ है—'कथन'। 'स्यात्' पूर्वक जो 'प्याट' है, अर्थात् वचन किंवा कथन है, वह स्याद्वाद है। अनेकान्तवाद तो एक दृष्टि है, एक विचार है, और उस विचार को

अभि-वक्त करने की जो भाषा-पद्धति है—उसी को यन्तुत स्याद्वाद कहा गया है। अपेक्षावाद का अर्थ है—“प्रत्येक वस्तु का भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से विचार करना।” सरंधा एक ही दृष्टिकोण से यन्तु के अवलोकन करने की पद्धति को जैन दर्शन में अपूर्ण और सन्तोष माना गया है। अतः प्रत्येक वस्तु को एक दृष्टिकोण से न देखकर अनेक दृष्टिकोणों से देखने को ही यन्तुत जैन दर्शन में अपेक्षावाद कहते हैं। इतना अन्तर होने पर भी स्याद्वाद और अपेक्षावाद—अनेकान्तवाद के नामान्तर ही हैं।

अनेकान्तवाद का स्वरूप :

अनेकान्तवाद केवल एक दार्शनिक सिद्धान्त ही नहीं है, बल्कि जीवन के क्षेत्र में एक समन्वय मूलक सधुर प्रयोग भी है, जो विचारों के द्वन्द्वों को साफ करता है। विचार और व्यवहार जीवन के दोनों क्षेत्रों में इस सिद्धान्त की समान भाव से प्रतिष्ठा है। अनेकान्तवाद क्या है ? और उसका मानव जीवन में क्या उप-

योग है ? उक्त प्रश्न के समाधान में कहा गया है, कि वस्तु को एकांगी विचार से न देखकर, अनेकांगी विचार से देखना चाहिये । वस्तु स्वरूप के कथन में 'ही' का प्रयोग न करके 'भी' का प्रयोग करना चाहिए । क्योंकि अपेक्षा भेद से एक ही वस्तु अनेक रूप हो सकती है । एक आचार्य ने अनेकान्तवाद का स्वरूप बताते हुये अपने शिष्य को समझाने के लिये, एक बड़ा सुन्दर रूपक दिया है, जो इस प्रकार है —

आचार्य ने अपनी मुशाम धुद्धि से स्थूल जगत् के माध्यम से अनेकान्त एव स्याद्वाद की व्याख्या प्रारम्भ की । आचार्य ने अपना एक हाथ खड़ा किया और कनिष्ठा तथा अनामिका अँगुलियों को शिष्य के सम्मुख करते आचार्य ने पूछा—“दोनों में छोटी कौन और बड़ी कौन ?” शिष्य ने कहा—“कनिष्ठा छोटी और अनामिका बड़ी ।” आचार्य ने कनिष्ठा को समेट ली और मध्यमा को प्रसारित करके पूछा—“धोलो, तो अथ, कौन छोटी, कौन बड़ी ?” शिष्य ने कहा—

“अथ तो अनामिका छोटी है, और मध्यमा बड़ी ।” आचार्य ने कहा—“यम, यही तो स्याद्वाद, अनेकान्तरवाद और अपेक्षावाद है। अपेक्षा भेद से जैसे एक ही अँगुली कभी बड़ी और कभी छोटी हो सकती है, वैसे ही अनेक धर्मात्मक एक ही वस्तु में कभी किमी धर्म की मुख्यता रहती है, तो कभी उसी धर्म को गौणता हो सकती है। जैसे आत्मा यह नित्य भी है, अनित्य भी। द्रव्य की अपेक्षा नित्य है, और पर्याय की अपेक्षा अनित्य भी है।

उत्पाद, व्यय और धौव्य :

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु उत्पाद, व्यय तथा धौव्य धर्मों से युक्त है। वस्तु में उत्पत्ति भी होती है, विनाश भी होता है और स्थिति भी होती है। एक स्वर्ण-कार के पास स्वर्ण का कङ्कन है, वह उसे गलान्तर हार बना लेता है। यहाँ पर कङ्कन का नाश होकर हार का उत्पाद होगया है। फिर भी सुवर्ण-रत्न तो व्यों का त्यों है—कङ्कन में भी और हार में भी, यह स्थिति है। विनाश और उत्पत्ति केवल

आकार की हुई है, वस्तु वैसी की वैसी है। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये।

नयवाद और प्रमाणवाद :

जैन दर्शन के अनुसार वस्तु को जानने के दो उपाय हैं—नय और प्रमाण। अनेक धर्मात्मक वस्तु के किसी एक अंश का ज्ञान जिससे ही, वह ज्ञान 'नय' कहा जाता है, और वस्तु के अनेक अंशों को ग्रहण करने वाला ज्ञान 'प्रमाण' है। जैसे आम्र फल है। उसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श सभा है। रूप मुखेन, रस-मुखेन, गन्धमुखेन और स्पर्शमुखेन आम्र का जो ज्ञान है, वह तो नय है, तथा आम्र मुखेन जो ज्ञान है, वह प्रमाण है। अनेकान्तवाद को समझने के लिये नयों का ज्ञान आवश्यक है।

नयों का स्वरूप :

मुख्य रूप में नय दो हैं—द्रव्य नय और पर्याय नय। जिस दृष्टि में द्रव्य मुख्य

है और पर्याय गौण है—वह द्रव्य नय है, जिस दृष्टि में पर्याय मुख्य है, और द्रव्य गौण है—वह पर्याय नय है। द्रव्य नय के चार भेद हैं—जैगम, समष्ट, व्यषट्ठार और ऋजुमूत्र। पर्याय नय के तीन भेद हैं—शब्द, समभिरुद्ध और ष्वभूत। प्रथम के चार भेदों में पर्याय दृष्टि की गौणता और द्रव्य दृष्टि की मुख्यता होने से द्रव्यार्थिक नय है, तथा अन्त के तीन भेदों में द्रव्य दृष्टि की गौणता और पर्याय दृष्टि की मुख्यता होने से पर्यायार्थिक नय है। नयों का विषय अत्यन्त गम्भीर है। अतः संक्षेप में वर्णन किया गया है।

प्रमाण का स्वरूप :

वस्तु के निश्चयात्मक ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। प्रमाण दो हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं—अवधि-ज्ञान, मा पर्याय-ज्ञान और केवल-ज्ञान। परोक्ष के दो भेद हैं—मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान।

द्रव्य, गुण और पर्याय :

१. द्रव्य का अर्थ है—वस्तु, पदार्थ और तत्त्व।

प्रत्येक वस्तु में दो धर्म मुख्य हैं—गुण और पर्याय । महमारी धर्म को गुण कहते हैं और क्रमभावी धर्म को पर्याय कहते हैं । गुण सहभावी धर्म है और पर्याय क्रम भावी धर्म है ।

अनेकान्त के व्याख्याकार :

अनेकान्तवाद स्याद्वाद और अपेक्षावाद के मूल धोज आगमों में यत्र-तत्र सिंगरे पडे हैं । परन्तु उसके व्यवस्थित एवं तर्क सगत व्याख्याकारों में आचार्य सिद्धसेन दिवाकर आचार्य समन्नभद्र, हरिभद्र अफलक और यशो विजय आदि मुख्य हैं । इन्होंने स्याद्वाद एवं अनेकान्तवाद को विराट रूप दिया । उसकी मूल दृष्टि को अंकुशित, पल्लवित, पुष्पित और फलित किया । उसकी युग स्पर्शा व्याख्या करके उसे मानव जीवन का एक उपयोगी सिद्धान्त बना दिया ।

संस्कृति

जैन संस्कृति हृदय और बुद्धि के स्वस्थ समन्वय से मानव जीवन को सग्स, सुन्दर और मधुर बनाने का दिव्य सन्देश देती है। विचार में आचार और आचार में विचार जैन संस्कृति का मूल भूत सिद्धान्त है। जैन संस्कृति का सीधा मरल अर्थ है—जीवन की उर्वर भूमि में स्नेह, सहानुभूति, सहिष्णुता के बीजों का वपन करना। यह संस्कृति विशाल है, विराट है और व्यापक है। परन्तु यहाँ जैन संस्कृति के आधारभूत तत्वों का संक्षेप में परिचय देने का प्रयत्न होगा।

समन्वय भावना :

जैन संस्कृति का रूप सदा से समन्वयात्मक एवं व्यापक रहा है। इसका भव्य द्वार सबके लिये खुला रहा है। इस व्यापक तथा विशाल दृष्टिकोण का मूल षषासम्प्रदायिक भावना और जातिवाद का अभाव है। जैनत्व क्या है ?

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की साधना। उक्त साधना करने वाला किसी भी देश का हो, किसी भी जाति का हो, किसी भी मत पन्थ का हो, वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है। नयनाद और स्याद्वाद के द्वारा विभिन्न विचारों में समन्वय विस्थापित करने का सफल प्रयत्न जैन संस्कृति ने किया है।

गुण पूजा :

जैन संस्कृति में व्यक्ति के गुणों का आदर होता है, मात्र व्यक्ति का नहीं। जिसमें त्याग, तपस्या, सयम तथा सदाचार आदि गुण हैं, वह पूज्य है। भले ही वह किसी जाति का हो। भले ही वह नर या नारी कोई भी क्यों न हो ? पूजा का आधार जाति एवं जन्म नहीं, परंतु व्यक्ति के सत्कर्म तथा सदगुण हैं। इसी आधार पर जैन संस्कृति के मूल मन्त्र पञ्च परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है, किसी व्यक्ति विशेष को नहीं। पूरा मन्त्र इस प्रकार है —

नमो अरिहताय — नमस्कार हो, अरिहत्तों को
 नमो सिद्धाय — नमस्कार हो, सिद्धों को
 नमो आचरियाय — नमस्कार हो, आचार्यों को
 नमो उवज्जायाय — नमस्कार हो, उपाध्यायों को
 नमो लोण मन्वसाहूण — नमस्कार हो, लोक के
 सर्व साधुओं को ।

समतावाद :

समता का अर्थ है—सबको बराबर मानना ।
 न किसी के प्रति राग, न किसी के प्रति द्वेष ।
 जैन मन्त्रुति में किसी भी प्रकार के विषम भाव को
 स्थान नहीं है । वहाँ मनुष्य ही नहीं, सभी जीवों
 को जीवित रहने और अपना विकास करने का
 सहज अधिकार प्राप्त है । जन्म से न कोई शूद्र
 है और न कोई ब्राह्मण । कम से ही शूद्र होता है,
 कर्म से ही ब्राह्मण भी । हरिकेशी मुनि जन्म से
 बालक होकर भी मद्गुणों से वह सभी का
 पूज्य था । अतः जातिगत, देशगत और वर्णगत
 उच्चता-नीचता में जैन मन्त्रुति का विश्वास
 नहीं है ।

नारी जीवन का सत्कार :

समाज में नारी जीवन का सना अपमान ही होता रहा है। समाज में, धर्म में और राजनीति में नारी को वे अधिकार नहीं थे, जो एक पुरुष को हो सकते थे। नारी भी इतिहासों का तरह अपमान की वस्तु बन गई थी। परन्तु भगवान महात्मा ने नारी जीवन का भी सत्कार करने को आवाज बुलन्द की। अपने संघ में नारी को लेने का निश्चय उन्होंने किया। फलतः समाज, धर्म और राजनीति में, सबत्र नारी जीवन प्रतिष्ठित होना लगा। यह एक बहुत बड़ी क्रान्ति थी, उस युग में। चन्दना और जयन्ती जैसी तेजस्वी नारियाँ न जैन संस्कृति में ही नहीं, अन्य संस्कृतियों में भी गौरव प्राप्त किया था। गांधी-युग में भी नारी ने बहुत बड़ा गौरव प्राप्त किया है।

हृदय परिवर्तन :

जैन संस्कृति में वास्तविक क्रिया काण्ड को अपेक्षा हृदय परिवर्तन पर जोर दिया

गया है। मनुष्य किसी भी देश का हो, किसी वेष का हो, किसी भी जाति का हो, किन्तु यदि उसका हृदय शुद्ध है, निर्मल है, परित्र है, तो वह अपने जीवन का निश्चय ही कल्याण कर सकेगा। यहाँ चारित्र-निर्माण की श्रौर विशेष ध्यान दिया गया है। जीवन में नैतिक जागरण से ही अध्यात्म जागरण स्थिर रह सकेगा। मनुष्य का हृदय घट-लिय, तो उसका जीवन रत ही बदल जाएगा।

कला :

कला का मानव जीवन से गहरा सम्बन्ध रहा है। सस्कृति का एक अंग ही है, कला भी। भले ही कला का धर्म और दर्शन से सीधा सम्बन्ध न रहा हो। परन्तु समाज और सस्कृति से तो इसका सीधा सम्बन्ध रहा ही है। भगवान् ऋषभदेव ने पुरुषों को ७२ और स्त्रियों को ६४ कलाओं का शिक्षण दिया था। इनमें लेख, गणित, संगीत, नृत्य, चित्र, स्थापत्य, शिल्प और वेष भूषा आदि का समावेश हो जाता है। वर्तमान में आबू का

जैन मन्दिर शिल्प एवं स्थापत्य कला का सर्वोच्च नमूना है, जो विश्व का एक आश्चर्य माना जाता है।

जैन पर्व :

पर्व, संस्कृति और कला का मिश्रित रूप होता है। प्रत्येक परम्परा के अपने कुछ विशिष्ट पर्व अवश्य होते हैं। जैन संस्कृति में मुख्य रूप में पाँच पर्व माने जाते हैं —

- १ सवत्सरी, पयुर्पण पर्व, दश लाक्षणी।
- २ अक्षय तृतीया।
- ३ दीपावली, वीर निर्वाण।
- ४ वीर जयन्ती।
- ५ पार्श्व जयन्ती।

पयुर्पण-पर्व अध्यात्म-माधना का पर्व है। यह समस्त पर्वों में मुख्य होने से पर्वराज कहा जाता है। यह पर्व भाद्र मास की वदी १० अथवा १३ से लेकर भाद्र मास की सुदी ४ अथवा ५ तक मनाया जाता है। इस में त्याग, तपस्या, स्वाध्याय,

आत्मचिन्तन, ध्यात आदि आत्म-शोधक क्रियाओं की प्रशिक्षण की जाती है। पशु-पक्ष पर्यं का अन्तिम त्रिपक्ष मरुत्सर्ग कहा जाता है। इस पक्ष में आठ दिन होने से आष्टाह्निक पर्यं भी कहते हैं। वर्ष भर को भूल-चूनों के लिये इस पर्यं में क्षमापना की जाती है। अतः इसको क्षमापना पर्यं भी कहते हैं। निगम्वर परम्परा में भाद्र शुक्ल पचमी से चतुर्दशी तक दश लक्षण पर्यं मनाया जाता है। अतः दश लक्षणा कहा जाता है। -

अक्षय तृतीया का सम्बन्ध भगवान् ऋषभदेव से है। भगवान् ने वर्ष भर की तपस्या की थी। तप आग्न लिया और न जल ही। वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन भगवान् ने इक्षु-रस से पारणा किया था। अतः जैन मस्कृति में यह पर्यं अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी वर्षी तप करने वाले अक्षय तृतीया को इक्षु रस से पारणा करते हैं।

दीपावली का सम्बन्ध भगवान् महावीर के निर्वाण से है। कार्तिक अमावस्या को भगवान् का निर्वाण हुआ था। उस समय पावापुरी में

देवों ने और राजाओं ने प्रकाश किया था। आज वृत्ती का अनुकरण हीप जलाकर किया जाता है। अतः इसको वीर-निर्वाण दिवस भी कहा जाता है।

वीर-जयन्ती पर्व भी जैन संस्कृति का एक विशेष पर्व है। इसका सम्बन्ध भगवान् महावीर से है। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को भगवान् महावीर का जन्म हुआ था।

पार्श्व-जयन्ती भी जैन संस्कृति का प्रसिद्ध पर्व है। इसका सम्बन्ध भगवान् पार्श्वनाथ से है, जो तेईसवें तीर्थंकर थे। काशी में पौष वदी दशमी के दिन भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म हुआ था।

शिष्टाचार •

शिष्टाचार भी जैन संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। गुरु की विनय करना चाहिए। क्यों कि यह साधना-पथ का मार्ग दर्शक है। आचार्य सभ को आचार की शिक्षा देता है और उपाध्याय शिक्षण देता है, अतः दोनों की सेवा विनम्र मान

से करनी चाहिए । अरिहन्त और मिद्ध की अनु-
 दिन भक्ति करने से जीवन पावन होता है । माता
 और पिता की सेवा करने में कभी प्रमाद नहीं
 करना चाहिए । अपने से बड़ों का सदा आदर
 करो । सध में अशान्ति, क्रन्देश और घैर भाव पैग
 हो, ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए । अपने
 रिषारों को मधुर भाषा में व्यक्त करो । बड़ों की
 विनय और छोटों से सदा स्नेह भाव रगो ।
 जीवन में नैतिरता एर सभ्यता का सदा पालन
 करना चाहिये ।

उपसंहार

इतिहास :

जैन धर्म और जैन सस्कृति का इतिहास बहुत प्राचीन है। आज के इतिहासकार महानीर से पूर्व पार्वनाथ और नैमिनाथ के युग तक तो जा पहुँचे हैं। परन्तु जैन इतिहास तो उससे भी बहुत पूर्व अर्थात् श्रवण युग से प्रारम्भ होता है। जैन धर्म के चौबीस अवतार तथा बारह चक्रवर्ती, यह इतिहास की एक लम्बी परम्परा है। भारतीय इतिहास में मौर्यकाल एक प्रकार से जैन काल ही है। क्योंकि सम्राट चन्द्रगुप्त जैन था—आचार्य भद्र बाहु का शिष्य था। कलिंग सम्राट अशोक जैन था। गुप्त-युग में भी अनेक जैन राजा थे। गुजरात-सम्राट कुमार पाल आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य था। मध्य युग में भी अनेक जैन राजा हुये हैं। जैन धर्म का पालन बड़े-बड़े व्यापारी और सेठों ने भी किया है। आनन्द, कामदेव, सुरादेव

और महात्म्य जैसे ज्योतिषी तथा गायत्री भगवान् महात्म्य के परम-भक्त थे। इनका व्यापार भारत से बाहर विशेषा में भी जल-पानों के माध्यम से होता था। आनन्द श्रावक के ५०० हजा की खेती होता था, और ५० हजार गाएँ थीं। जैन श्रावक पशु पालन भी करते थे, और गेती भी करते थे। जैन इतिहास बहुविध और विस्तृत है। कुछ पृष्ठों में यह तहो दिया जा सकता। उमका अति सक्षिप्त परिचय ही यहाँ दिया गया है।

साहित्य :

जैन साहित्य बहुविध एवं परिमाण में विपुल और विशाल है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती, हिन्दी, बङ्गाली, मराठी और पञ्जाब आदि भारतीय भाषाओं में, तथा अंग्रेजी, जर्मनी और फ्रेंच जैसी विदेशी भाषाओं में भी जैन साहित्य उपलब्ध है। विषय विविधता की दृष्टि से भी जैन साहित्य बहुविध है। धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास, समाज, नीति, विज्ञान,

ज्योतिष, भूगोल, गगनोल, वैश्वक, काव्य-कला आदि विविध विषयों पर सग्यायद्ध ग्रन्थ जैन साहित्य में आज भी उपलब्ध हैं। भगवान् महावीर का मूल उपदेश अर्ध मागधी भाषा में है। जिसको आगम कहते हैं, अथवा द्वाणशागी-वाणी कहते हैं। कालान्तर में आचार्यों ने मूल आगमों पर प्राकृत में जो टीकाएँ लिखीं, वे नियुक्ति, भाष्य, और चूर्ण के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैन साहित्य स्रष्टाओं में आचार्य भद्र बाहु, उमास्वाति, भिद्धसेन त्रिवाकर, समन्त भद्र, कुन्द कुन्द, हरिभद्र, हेमचन्द्र और यशोव्रिय जी आदि सुप्रसिद्ध आचार्य हुए हैं।

समान :

समान आचार और समान विचार वाले मानव समूह का समाज कहते हैं। समान के लिये सघ शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। जैन समाज भारत के प्रत्येक प्रान्त में फैला हुआ है। फिर भी वह विशेषरूप में गुजरात में, मालवा

में, मेवाड़ में और मारवाड़ में बहुत बड़ी मठ्या में बसा हुआ है। पञ्जाब और उत्तर प्रदेश में भी जैनों की मठ्या काफी है। धामान में, जैन समाज अधिष्ठाता व्यापारी और उद्योगपति है। अन्य व्यवसायों में भी जैनों की मठ्या कम नहीं है। शिक्षा-क्षेत्र में, मेवाड़ में और डाक्टरी में भी इफा महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रशासन विभाग में भी अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर जैन कुशलता से काम कर रहे हैं। भारत से बाहर विदेशों में भी जैनों की बहुत बड़ी मठ्या रहती है। जैन समाज सभी दृष्टिकोणों से एक विचारशील, प्रगतिशील और उन्नतगीय समाज है, जिसमें ओसवाल, अमवाल, पल्लीवाल, जायसवाल, लखडेलवाल आदि अनेक वर्ग हैं, अनेक जाति तथा अनेक उपजातियाँ हैं।

वर्तमान सम्प्रदाय :

विचार, तत्त्व और सिद्धान्त की दृष्टि से यद्यपि जैन समाज अपने आप में एक है, असण्ड है, तथापि आचार और बाहरी

क्रियाकारणों को लेकर यह अनेक सम्प्रदायों में विभक्त होगया है। मुख्य रूप में दो सम्प्रदाय हैं—श्वेताम्बर और निगम्बर। दिगम्बरों में भी अनेक छोटे मोटे वर्ग हैं—जिनका आधार केवल आचार भेद ही है। श्वेताम्बरों में तीन सम्प्रदाय हैं—श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, श्वेताम्बर स्थानकवामी और श्वेताम्बर तेरा पन्थ। श्वेताम्बर परम्परा के तीनों सम्प्रदाय के मुनि श्वेत वस्त्र धारण करते हैं, अतः वे श्वेताम्बर कहे जाने लगे और दिगम्बर सम्प्रदाय के मुनि नग्न रहते हैं, अतः वे दिगम्बर कहे जाने लगे।

मूल में सब एक हैं :

यह सब भेद और सम्प्रदाय आचार भेद को लेकर सड़े हुये हैं। परन्तु दर्शन-पक्ष में, मस्कृति पक्ष में और सिद्धान्त में, जैन मात्र एक हैं। उनमें औपचारिक भेद है, मौलिक भेद नहीं। नमस्कार-मन्त्र, चौबीस तीर्थंकर, नव तत्त्व, पट्द्रव्य, और अर्धिसा तथा अनेकान्त

निदान्त में जैनों में कुछ भी अन्तर नहीं है, जरा भी भेद नहीं है।

सष-रचना :

जैन पराम्परा में समाज के लिये सष शब्द अधिक प्रचलित है। जैन धर्म की सष-रचना व्यवस्थित, नियमित और उदार है। नीयकर ही सष की रचना करते हैं। सष के लिये तीर्थ शब्द का प्रयोग जैन शास्त्रों में विशेष रूप से किया गया है। तीर्थ की स्थापना करने वाला तीर्थंकर कहा जाता है। तीर्थ चार हैं—अमण और अमणी तथा आसक और आविषा। इन को साधु और साध्वी तथा गृहस्थ और गृहस्था भी कहते हैं। इन चारों के समुदाय को तीर्थ, सष अथवा समाज कहते हैं। जैन सष रचना में नारी का उतना ही महत्त्व एवं गौरव है, जितना कि पुरुष का। जैन परम्परा में साधु और गृहस्थ दोनों सष के घटक हैं। सष की एकता, सष का हित और सष की सुरक्षा—जैन परम्परा में सर्वोच्च लक्ष्य है।

श्रमण और श्रमणी :

साधु और साध्वी का जीवन समाज पर आधारित होने पर भी अध्यात्म-प्रधान है। नैतिक शिक्षा, अध्यात्म उपदेश और आत्म-साधना का प्रचार एवं प्रसार करना—इनके जीवन का मुख्य कर्तव्य है। पञ्चमहाश्रम, पञ्चसमिति और तीन गुणित्त—ये साधु एवं साध्वी के सामान्य नियम हैं, जिनका परिपालन हर साधु और हर साध्वी को करना ही होता है। सर्व प्रकार से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिमिद का पालन करना—ये पञ्च महाश्रम हैं। विवेक में गमन करना, विवेक से प्रिय, मधुर एवं हित वचन बोलना, विवेक से गृहस्था व घरों में भोजन-पानी की गवेषणा करना, विवेक से वस्तु को लेना-देना और विवेक से त्याज्य वस्तु को डालना—ये पंच समिति हैं। मन को अशुभ विचारों से हटाकर शुभ विचारों में लगाना, वचन से कटु-कठोर न बोल कर प्रिय, मधुर एवं हित वचन बोलना तथा शरीर से अशुभ व्यापार न कर के शुभ व्यापार करना—ये तीन गुणित्त हैं।

जैन भिक्षु, मुनि और साधु सदा पैदल चलते हैं, किसी प्रकार की भी सवारी नहीं करते। वे कचन और कामती के त्यागी होते हैं। मृग पर मुग्ध-वस्त्रिका, हाथ में रजोहरण और मोली रगते हैं। सिर भी नगा और पैर भी नगे रहते हैं। गृहस्थों के घर से भिक्षा करके भोजन प्राप्त करते हैं। किसी भी प्रकार का व्ययन वे नहीं रखते हैं।

श्रावक और श्राविका :

जिस प्रकार श्रमण और श्रमणी के नियम समान होते हैं, उसी प्रकार श्रावक और श्राविका के नियम समान होते हैं। श्रावक के बारह व्रत होते हैं—पञ्च अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिज्ञा व्रत। गुणव्रत और शिज्ञाव्रत, उन नियम और उपनियमों की मक्षा हैं, जो पंच अणुव्रतों को सुदृढ़ करने के लिये होते हैं। वे पंच अणुव्रतों के परिपालन में सहायक होते हैं। गृहस्थ जीवन के योग्य कुछ विशेष अपवादों को छोड़कर मर्यादा पूर्वक अहिंसा, मत्स्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य (स्वपत्नी के अतिरिक्त शेष ब्रह्मचर्य) और अपरिग्रह (गृहस्थ

जीवन की योग्य आवश्यकताओं के अनिश्चित परिमह का त्याग) ये पंच अंगुव्रत हैं ।

रात्रि भोजन का त्याग :

भावक रात्रि-भोजन नहीं करते । रात्रि-भोजन में हिंसा का दोष तो लगता ही है, साथ में स्वास्थ्य को भी बड़ी हानि पहुँचती है । पानी को छानकर पीना चाहिये । आरक बिना छाना पानी कभी नहीं पीता । अष्टमो और चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों क लिन भावक हरी सब्जो नश्री खाता । पर्व लिनो में वह पौषण और उपवास भी करता है । भावक कभी भी अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करता । एक सगा जैन मास, शराव और अण्डे आदि अभक्ष्य एव अमाह्य पदार्थों का कभी सेवन नहीं करता । परदार-सेवन, घेरया-गमन और शिकार जैसे महापापों से वह सदा दूर रहता है ।

दव, गुरु और धर्म :

राग और द्वेष को जीतने वाले अरिहन्त को वह अपना आराध्य देव

मानता है। पंच महाश्रतों के पालन करने वाले आरम-माधक को वह अपना गुरु स्वीकार करता है। दया, करुणा, और सेवा को वह अपना धर्म मानता है।

वासुदेव रूप में सदा और वह है, जिसका सदाचार में विश्राम है, जो अपने जीवन को म्बद्ध, निर्मल और पवित्र रखने का प्रयत्न करता रहता है। जैन धर्म में जाति और देश का कोई बन्धन नहीं है। केवल जीवन की स्वच्छता और पवित्रता अपेक्षित है। फिर भले ही वह किसी भी जाति का हो, वह सच्चे अर्थों में श्रावक है, जैन है, उपासक है, और महावीर का भक्त है।

लवक की अथ पुस्तक

श्रायक प्रतिक्रमण सूत्र व्याख्या सहित

लघु सामायिक सूत्र १ ११

पर्षीस शोल ११ ११

मत्स्य का द्वार खुलने से

लो, पर्ना उठना है

सम्पादित पुस्तक

नयनाद

अमर भारती

अलोचना पाठ